श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

ब्रह्मा स्तुति(भागवत मुखस्थ परीक्षा हेतु)

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

तृतीय:(स्) स्कन्धः

अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां(न्),

नं ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।

नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं(म्),

मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥ 1॥

ब्रह्मा उवाच— ब्रह्मा ने कहा; ज्ञातः- ज्ञात; असि- हो; मे– मेरे द्वारा; अद्य– आज; सुचिरात्- दीर्घकाल के बाद; ननु- लेकिन; देह-भाजाम्— भौतिक देह वाले का; न– नहीं; ज्ञायते- ज्ञात है; भगवतः- भगवान् का; गतिः- रास्ता; इति— इस प्रकार; अवद्यम्—महान् अपराध; न अन्यत्— इसके परे कोई नहीं; त्वत् –तुम; अस्ति– है; भगवन्– हे भगवान्; अपि- यद्यपि है; तत्— जो कुछ हो सके; न- कभी नहीं; शुद्धम् –परम; माया-भौतिक शक्ति के; गुण-व्यतिकरात्— गुणों के मिश्रण के कारण; यत्– जिसको; उरुः– दिव्य; विभासि- तुम हो ।

ब्रह्माजी ने कहा- प्रभो ! आज बहुत समय के बाद मैं आपको जान सका हूँ। अहो ! कैसे दुर्भाग्य की बात है कि देहधारी जीव आपके स्वरूप को नहीं जान पाते। भगवान ! आपके सिवा और कोई वस्तु नहीं है। जो वस्तु प्रतीत होती है, वह भी स्वरूपतः सत्य नहीं है, क्योंकि माया के गुणों के क्षुभित होने के कारण केवल आप ही अनेकों रूपों में प्रतीत हो रहे हैं।

रूपं(यँ) यदेतदवबोधरसोदयेन,

शश्वन्निवृत्ततमसः(स्) सदनुग्रहाय ।

आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं(यँ),

यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥ 2॥

रूपम्—स्वरूप; यत्— जो; एतत्— वह; अवबोध-रस- आपकी अन्तरंगा शक्ति के; उदयेन– प्राकट्य से; शश्वत्— चिरन्तन; निवृत्त—से मुक्त; तमसः-भौतिक कल्मष; सत्-अनुग्रहाय-भक्तों के हेतु; आदौ – पदार्थ की सृजनशक्ति में मौलिक; गृहीतम्— स्वीकृत; अवतार - अवतारों का; शत-एक-बीजम्-

सैकड़ों का मूल कारण; यत्— जो; नाभि-पद्म– नाभि से निकला कमल का फूल; भवनात्— घर से; अहम्— मैं; आविरासम्— उत्पन्न हुआ ।

देव ! आपकी चित शक्ति के प्रकाशित रहने के कारण अज्ञान आप से सदा ही दूर रहता है। आपका यह रूप, जिसके नाभि-कमल से मैं प्रकट हुआ हूँ, सैकड़ों अवतारों का मूल कारण है। इसे आपने सत्पुरुषों पर कृपया करने के लिये ही पहले-पहल प्रकट किया है।

नातः(फ्) परं(म्) परम यद्भवतः(स्) स्वरूप-

मानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।

पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्,

भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥ 3॥

न— नहीं; अतः परम्— इसके पश्चात्; परम– हे परमेश्वर; यत्— जो; भवतः– आपका; स्वरूपम्— नित्यरूप; आनन्द-मात्रम्-निर्विशेष ब्रह्मज्योति;अविकल्पम्- बिना परिवर्तन के; अविद्ध-वर्चः- शक्ति के ह्रास बिना; पश्यामि– देखता हूँ; विश्व-सृजम्- विराट जगत के स्रष्टा को; एकम्- अद्वय; अविश्वम्– फिर भी पदार्थ का नहीं; आत्मन्— हे परम कारण; भूत- शरीर; इन्द्रिय– इन्द्रियाँ; आत्मक- ऐसी पहचान से; मदः- गर्व; ते- आपके प्रति; उपाश्रितः- शरणागत; अस्मि– हूँ |

परमात्मन् ! आपका जो आनन्दमात्र, भेदरहित, अखण्ड तेजोमय स्वरूप है, उसे मैं इससे भिन्न नहीं समझता। इसलिये मैंने विश्व की रचना करने वाले होने पर भी विश्वातीत आपके इस अद्वितीय रूप की ही शरण ली है। यहाँ सम्पूर्ण भूत और इन्द्रियों का भी अधिष्ठान है।

तद्वा इदं(म्) भुवनमङ्गल मङ्गलाय,

ध्याने स्म नो दर्शितं(न्) त उपासकानाम् ।

तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं(यँ),

योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥ 4॥

तत्— भगवान् श्रीकृष्ण; वा– अथवा; इदम्— यह वर्तमान स्वरूप; भुवन-मङ्गल- हे समस्त ब्रह्माण्डों के लिए सर्वमंगलमय; मङ्गलाय—समस्त सम्पन्नता के लिए; ध्याने-ध्यान में; स्म– मानो था; नः– हमको; दर्शितम्– प्रकट; ते— तुम्हारे; उपासकानाम्—भक्तों का; तस्मै— उनको; नमः- मेरा सादर नमस्कार; भगवते– भगवान् को; अनुविधेम– सम्पन्न करता हूँ; तुभ्यम्—तुमको; यः–जो; अनादृतः– उपेक्षित है; नरक-भाग्भिः– नरक जाने वाले व्यक्तियों द्वारा; असत्-प्रसङ्गैः–भौतिक कथाओं द्वारा ।

हे विश्वकल्याणमय! मैं आपका उपासक हूँ, आपने मेरे हित के लिये ही मुझे ध्यान में अपना यह रूप दिखलाया है। जो पापात्मा विषयासक्त जीव हैं, वे ही इसका अनादर करते हैं। मैं तो आपको इसी रूप में बार-बार नमस्कार करता हूँ।

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं(ञ्),

जिघ्रन्ति कर्णविवरैः(श्) श्रुतिवातनीतम् ।

भक्त्या गृहीतचरणः(फ्) परया च तेषां(न्),

नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुं(म्)साम् ॥ 5॥

ये—जो लोग; तु–लेकिन; त्वदीय- आपके; चरण-अम्बुज– चरणकमल; कोश– भीतर; गन्धम्— सुगन्ध; जिघ्रन्ति- सूँघते हैं; कर्ण-विवरैः–कानों के मार्ग से होकर; श्रुति-वात-नीतम्— वैदिक ध्वनि की वायु से ले जाये गये; भक्त्या- भक्ति द्वारा; गृहीत-चरणः—चरणकमलों को स्वीकार करते हुए; परया– दिव्य; च– भी; तेषाम्– उनके लिए; न– कभी नहीं; अपैषि- पृथक्; नाथ– हे प्रभु; हृदय- हृदय रूपी; अम्बु-रुहात्— कमल से; स्व-पुंसाम् — अपने ही भक्तों के

मेरे स्वामी ! जो लोग वेद - रूप वायु से लायी हुई आपके चरण रूप कमलकोश की गन्ध को अपने कर्णपुटों से ग्रहण करते हैं, उन अपने भक्तजनों के हृदय कमल से आप कभी दूर नहीं होते; क्योंकि वे पराभक्ति रूप डोरी से आपके पादपद्मों को बाँध लेते हैं।

तावद्भयं(न्) द्रविणदेहसुहृन्निमित्तं(म्),

शोकः(स्) स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।

तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं(यँ),

यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं(म्) प्रवृणीत लोकः ॥ 6॥

तावत्—तब तक; भयम्— भय; द्रविण– सम्पत्ति; देह– शरीर; सुहृत्— सम्बन्धी जन; निमित्तम्— के लिए; शोकः– शोक; -स्पृहा– इच्छा; परिभवः- साज - सामग्री; विपुलः- अत्यधिक; च- भी; लोभः- लालच; तावत्— उस समय तक; मम- मेरा; इति—इस प्रकार; असत्- नश्वर; अवग्रहः– दुराग्रहं; आर्ति-मूलम्— चिन्ता से पूर्ण; यावत्— जब तक; न– नहीं; ते— तुम्हारे; अङ्घ्रिम्-अभयम्- सुरक्षित चरणकमल; प्रवृणीत- शरण लेते हैं; लोकः- संसार के लोग।

जब तक पुरुष आपके अभयप्रद चरणारविन्दों का आश्रय नहीं लेता, तभी तक उसे धन, घर और बन्धुजनों के कारण प्राप्त होने वाले भय, शोक, लालसा, दीनता और अत्यन्त लोभ आदि सताते हैं और तभी तक उसे मैं मेरेपन का दुराग्रह रहता है, जो दुःख का एकमात्र कारण है।

दैवेन ते हतधियो भवतः(फ्) प्रसङ्गात्,

सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ।

कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना,

लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥ 7॥

दैवेन—दुर्भाग्य से; ते—वे; हत-धियः– स्मृति से वंचित; भवतः- आपकी; प्रसङ्गात्– कथाओं से; सर्व– समस्त; अशुभ– अकल्याणकारी; उपशमनात्— शमन करते हुए; विमुख- के विरुद्ध बने हुए; इन्द्रियाः – इन्द्रियाँ; ये– जो; कुर्वन्ति— करते हैं; काम– इन्द्रिय-तृप्ति; सुख– सुख; लेश– अल्प; लवाय- क्षण भर के लिए; दीनाः– बेचारे; लोभ-अभिभूत—लोभ से ग्रसित; मनसः– मन वाले; अकुशलानि-अशुभ कार्यकलाप; शश्वत्— सदैव ।

जो लोग सब प्रकार के अमङ्गलों को नष्ट करने वाले आपके श्रवण-कीर्तनादि से इन्द्रियों को हटाकर लेशमात्र विषय - सुख के लिये दीन और मन-ही-मन लालायित होकर निरन्तर दुष्कर्मों में लगे रहते हैं, उन बेचारों की बुद्धि दैव ने हर ली है।

क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः(श्),

शीतोष्णवातवरषैरितरेतराच्च ।

कामाग्निनाच्युत रुषा च सुदुर्भरेण,

सम्पश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥ 8॥

क्षुत्— भूख; तृट्—प्यास; त्रि-धातुभिः- तीन-रस, यथा कफ, पित्त तथा वायु; इमाः- ये सभी; मुहुः– सदैव ; अर्द्यमानाः- व्यग्र; शीत—जाड़ा; उष्ण– गर्मी; वात– वायु; वरषैः- वर्षा द्वारा; इतर- इतरात्- तथा अन्य अनेक उत्पात; च- भी; काम-अग्निना–प्रबल यौन इच्छा से; अच्युत-रुषा– दुःसह क्रोध; च- भी; सुदुर्भरेण - अत्यन्त असह्य; सम्पश्यतः– देखते हुए; मनः—मन; उरुक्रम- हे महान् कर्ता; सीदते- निराश होता है; मे- मेरा ।

अच्युत! उरुक्रम! इस प्रजा को भूख-प्यास, वात, पित्त, कफ, सर्दी, गर्मी, हवा और वर्षा से, परस्पर एक-दूसरे से तथा कामाग्नि और दुःसह क्रोध से बार - बार कष्ट उठाते देखकर मेरा मन बड़ा खिन्न होता है।

यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थ-

मायाबलं(म्) भगवतो जन ईश पश्येत् ।

तावन्न सं(म्)सृतिरसौ प्रतिसं(ङ्)क्रमेत,

व्यर्थापि दुःखनिवहं(वँ) वहती क्रियार्था ॥ 9॥

यावत्—जब तक; पृथक्त्वम्– विलगाव; इदम्– यह; आत्मनः– शरीर का; इन्द्रिय-अर्थ- इन्द्रियतृप्ति के लिए; माया- बलम्- बहिरंगा शक्ति का प्रभाव; भगवतः– भगवान् का; जनः– व्यक्ति; ईश- हे प्रभु; पश्येत्— देखता है; तावत्— तब तक; न—नहीं; संसृतिः- भौतिक जगत का प्रभाव; असौ— वह मनुष्य; प्रतिसङ्क्रमेत- लाँघ सकता है; व्यर्था-अपि- यद्यपि अर्थहीन; दुःख-निवहम्- अनेक दुख; वहती- लाते हुए; क्रिया-अर्था- सकाम कर्मों के लिए।

स्वामिन्! जब तक मनुष्य इन्द्रिय और विषयरूपी माया के प्रभाव से आपसे अपने को भिन्न देखता है, तब तक उसके लिये इस संसार चक्र की निवृत्ति नहीं होती। यद्यपि यह मिथ्या है, तथापि कर्मफल भोग का क्षेत्र होने के कारण उसे नाना प्रकार के दुःखों में डालता रहता है।

अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निः(श्)शयाना,

नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।

दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव,

युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह सं(म्)सरन्ति ॥ 10॥

अह्नि—दिन के समय; आपृत- व्यस्त; आर्त – दुखदायी कार्य; करणाः- इन्द्रियाँ; निशि– रात में; निः शयानाः– अनिद्रा; नाना– विविध; मनोरथ- मानसिक चिन्तन; धिया- बुद्धि द्वारा; क्षण– निरन्तर; भग्न –टूटी हुई; निद्राः- नींद; दैव- अतिमानवीय; आहत-अर्थ- हताश; रचनाः – योजनाएँ; ऋषयः– ऋषिगण;

अपि– भी; देव– हे प्रभु; युष्मत्— आपकी; प्रसङ्ग- कथा से; विमुखाः- विरुद्ध; इह- इस (जगत) में; संसरन्ति- चक्कर लगाते हैं ।

देव! औरों की तो बात ही क्या–जो साक्षात् मुनि हैं, वे भी यदि आपके कथा प्रसंग से विमुख रहते हैं तो उन्हें संसार में फँसना पड़ता है। वे दिन में अनेक प्रकार के व्यापारों के कारण विक्षिप्त चित्त रहते हैं, रात्रि में निद्रा में अचेत पड़े रहते हैं; उस समय भी तरह - तरह के मनोरथों के कारण क्षण - क्षण में उनकी नींद टूटती रहती है तथा दैववश उनकी अर्थ सिद्धि सब उद्योग भी विफल होते रहते हैं।

त्वं(म्) भावयोगपरिभावितहृत्सरोज,

आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुं(म्)साम् ।

यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति,

तत्तद्वपुः(फ्) प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ 11॥

त्वम्– तुमको; भक्ति-योग- भक्ति में; परिभावित- शत प्रतिशत लगे रहकर; हृत्– हृदय के; सरोजे– कमल में; आस्से- निवास करते हो; श्रुत-ईक्षित-कान के माध्यम से देखा हुआ; पथः- पथ; ननु– अब; नाथ– हे स्वामी; पुंसाम्— भक्तों का; यत्-यत्— जो; धिया — ध्यान करने से; ते —- तुम्हारा; उरुगाय – हे बहुख्यातिवान्; विभावयन्ति–विशेष रूप से चिन्तन करते हैं; तत्-तत्—वही वही; वपुः- दिव्य स्वरूप; प्रणयसे– प्रकट करते हो; सत्- अनुग्रहाय- अपनी अहैतुकी कृपा दिखाने के लिए ।

नाथ! आपका मार्ग केवल गुण-श्रवण से ही जाना जाता है। आप निश्चय ही मनुष्यों के भक्तियोग के द्वारा परिशुद्ध हुए हृदय - कमल में निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो! आपके भक्तजन जिस-जिस भावना से आपका चिन्तन करते हैं, उन साधु पुरुषों पर अनुग्रह करने के लिये आप वही - वही रूप धारण कर लेते हैं।

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारै-

राराधितः(स्) सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ।

यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको,

नानाजनेष्ववहितः(स्) सुहृदन्तरात्मा ॥ 12॥

न—कभी नहीं; अति- अत्यधिक; प्रसीदति- तुष्ट होता है; तथा— जितना; उपचित— ठाठबाट से; उपचारैः- पूजनीय साज सामग्री सहित; आराधितः- पूजित होकर; सुर- गणैः- देवताओं द्वारा; हृदि बद्ध - कामैः– समस्त प्रकार की भौतिक इच्छाओं से पूरित हृदय से; यत्— जो; सर्व– समस्त; भूत- जीव; दयया– उन पर अहैतुकी कृपा दिखाने के लिए; असत्- अभक्त; अलभ्यया— प्राप्त न हो सकने से; एकः- अद्वितीय; नाना– विविध; जनेषु– जीवों में; अवहितः- अनुभूत; सुहृत्– शुभेच्छु मित्र; अन्तः- भीतर; आत्मा-परमात्मा ।

भगवान ! आप एक हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरणों में स्थित उनके परम हितकारी अन्तरात्मा है। इसलिये यदि देवता लोग भी हृदय में तरह - तरह की कामनाएँ रखकर भाँति-भाँति की विपुल सामग्रियों से आपका पूजन करते हैं, तो उससे आप उतने प्रसन्न नहीं होते जितने सब प्राणियों पर दया करनेसे होते हैं। किन्तु वह सर्वभूत दया असत् पुरुषों को अत्यन्त दुर्लभ है।

पुं(म्)सामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्-

दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ।

आराधनं(म्) भगवतस्तव सत्क्रियार्थो,

धर्मोऽर्पितः(ख्) कर्हिचिद्भ्रियते न यत्र ॥ 13॥

पुंसाम्— लोगों का; अतः- इसलिए; विविध-कर्मभिः- नाना प्रकार के सकाम कर्मों द्वारा; अध्वर-आद्यैः -वैदिक अनुष्ठान सम्पन्न करने से; दानेन- दान के द्वारा; च- तथा; उग्र- अत्यन्त कठोर; तपसा- तपस्या से; परिचर्यया- दिव्य सेवा द्वारा; च— भी; आराधनम्— पूजा; भगवतः– भगवान् की; तव– तुम्हारा; सत्-क्रिया-अर्थः- एकमात्र आपको प्रसन्न करने के लिए; धर्मः– धर्म; अर्पितः- इस प्रकार अर्पित; कर्हिचित्- किसी समय; म्रियते- विनष्ट होता है; न- कभी नहीं; यत्र- वहाँ ।

जो कर्म आपको अर्पण कर दिया जाता है, उसका कभी नाश नहीं होता - वह अक्षय हो जाता है। अतः नाना प्रकार के कर्म- यज्ञ, दान, कठिन तपस्या और व्रतादि के द्वारा आपकी प्रसन्नता प्राप्त करना ही मनुष्य का सबसे बड़ा कर्मफल है, क्योंकि आपकी प्रसन्नता होने पर ऐसा कौन फल है जो सुलभ नहीं हो जाता।

शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेद-

मोहाय बोधधिषणाय नमः(फ्) परस्मै ।

विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीला-

रासाय ते नम इदं(ञ्) चकृमेश्वराय ॥ 14॥

शश्वत्— शाश्वत रूप से; स्वरूप- दिव्य रूप; महसा- महिमा के द्वारा; एव– निश्चय ही; निपीत– विभेदित; भेद- अन्तर; मोहाय— मोहमयी धारणा के हेतु; बोध- आत्म-ज्ञान; धिषणाय- बुद्धि; नमः- नमस्कार; परस्मै- ब्रह्म को; विश्व-उद्भव-विराट जगत की सृष्टि; स्थिति– पालन; लयेषु- संहार भी; निमित्त- के हेतु; लीला– ऐसी लीलाओं से; रासाय- भोग हेतु; ते– तुम्हें; नमः– नमस्कार; इदम्– यह; चक्रम– मैं करता हूँ; ईश्वराय- परमेश्वर को ।

आप सर्वदा अपने स्वरूप के प्रकाश से ही प्राणियों के भेद-भ्रमरूप अन्धकार का नाश करते रहते हैं तथा ज्ञान के अधिष्ठान साक्षात परमपुरुष हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूं। संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के निमित्त से जो माया की लीला होती है, वह आपका ही खेल है, अतः आप परमेश्वर को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि,

नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।

ते नैकजन्मशमलं(म्) सहसैव हित्वा,

सं(यँ)यान्त्यपावृतमृतं(न्) तमजं(म्) प्रपद्ये ॥ 15॥

यस्य– जिसके; अवतार- अवतार; गुण- दिव्य गुण; कर्म- कर्म; विडम्बनानि- सभी रहस्यमय; नामानि - दिव्य नाम; ये- वे; असु-विगमे- इस जीवन को छोड़ते समय; विवशाः– स्वतः; गृणन्ति- आवाहन करते

हैं; ते– वे; अनैक– अनेक; जन्म–जन्म; शमलम्- संचित पाप; सहसा– तुरन्त; एव– निश्चय ही; हित्वा- त्याग कर; संयान्ति- प्राप्त करते हैं; अपावृत– खुली; अमृतम्— अमरता; तम्— उस; अजम्– अजन्मा की; प्रपद्ये- मैं शरण लेता हूँ ।

जो लोग प्राणत्याग करते समय आपके अवतार, गुण और कर्मों को सूचित करने वाले देवकी - नन्दन, जर्नादन, कंस-निकन्दन आदि नामों का विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेकों जन्मों के पापों से तत्काल छूटकर मायादि आवरणों से रहित ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं, मैं आपकी शरण लेता हूँ।

यो वा अहं(ञ्) च गिरिशश्च विभुः(स्) स्वयं(ञ्) च,
स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ।
भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोहस्-
तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥ 16॥

यः– जो; वै–निश्चय ही; अहम् च– मैं भी; गिरिशः च- शिव भी; विभुः- सर्वशक्तिमान; स्वयम्- स्वयं (विष्णु रूप में); च—तथा; स्थिति—पालन; उद्भव– सृजन; प्रलय— संहार; हेतवः- कारण; आत्म-मूलम्— स्वतः स्थित; भित्त्वा- भेदकर; त्रि-पात्— तीन तने; ववृधे– उगा; एकः– अद्वितीय; उरु— अनेक; प्ररोहः – शाखाएँ; तस्मै— उसे; नमः- नमस्कार; भगवते- भगवान् को; भुवन-द्रुमाय- लोक रूपी वृक्ष को ।

भगवान ! इस विश्ववृक्ष के रूप में आप ही विराजमान हैं। आप ही अपनी मूलप्रकृति को स्वीकार करके जगत को उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिये मेरे, अपने और महादेवजी के रूप में तीन प्रधान शाखाओं में विभक्त हुए हैं और फिर प्रजापति एवं मनु आदि शाखा प्रशाखाओं के रूप में फैलकर बहुत विस्तृत हो गये हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

लोको विकर्मनिरतः(ख्) कुशले प्रमत्तः(ख्),
कर्मण्ययं(न्) त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां(म्),
सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ 17॥

लोकः– सामान्य लोग; विकर्म- अविचारित कर्म में; निरतः- लगे हुए; कुशले- लाभप्रद कार्य में; प्रमत्तः - लापरवाह; कर्मणि-कर्म में; अयम्- यह; त्वत्- आपके द्वारा; उदिते- घोषित; भवत्- आपकी; अर्चने- पूजा में; स्वे– अपने; यः- जो; तावत्—जब तक;अस्य- सामान्य लोगों का; बलवान्— अत्यन्त शक्तिमान; इह– यह; जीवित-आशाम्– जीवन-संघर्ष;- सद्यः—प्रत्यक्षतः; छिनत्ति- काट कर खण्ड खण्ड कर दिया जाता है; अनिमिषाय- नित्य काल द्वारा; नमः–नमस्कार; अस्तु— हो; तस्मै– उसके लिए ।

भगवान ! आपने अपनी आराधना को ही लोकों के लिये कल्याणकारी स्वधर्म बताया है, किन्तु वे इस ओर से उदासीन रहकर सर्वदा विपरीत कर्मो में लगे रहते हैं। ऐसी प्रमाद की अवस्था में पड़े हुए इन जीवों की जीवन-आशा को जो सदा सावधान रहकर बड़ी शीघ्रता से काटता रहता है, वह बलवान काल भी आपका ही रूप है; मैं उसे नमस्कार करता हूँ।

यस्माद्बिभेम्यहमपिं द्विपरार्धधिष्ण्य-

मध्यासितः(स्) सकललोकनमस्कृतं(यँ) यत् ।

तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्-

तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥ 18॥

यस्मात्-जिस से;बिभेमि–डरता हूँ; अहम्-मैं;अपि- भी;द्वि-पर-अर्ध- ४,३०,००,००,०००x२३०×१२x१०० सौर वर्षों की सीमा तक; धिष्ण्यम्— स्थान में; अध्यासितः- स्थित; सकल-लोक- अन्य सारे लोकों द्वारा; नमस्कृतम्- आदरित; यत्—जिसने; तेपे —किया; तपः– तपस्या; बहु-सवः- अनेकानेक वर्ष; अवरुरुत्समानः– आपको प्राप्त करने की इच्छा से; तस्मै— उन को; नमः— मैं नमस्कार करता हूँ; भगवते– भगवान् को; अधिमखाय– समस्त यज्ञों के भोक्ता; तुभ्यम् - आपको ।

यद्यपि मैं सत्यलोक का अधिष्ठाता हूँ, जो दो परार्द्ध पर्यन्त रहने वाला और समस्त लोकों का वन्दनीय है, तो भी आपके उस काल रूप से डरता रहता हूँ। उससे बचने और आपको प्राप्त करने के लिये ही मैंने बहुत समय तक तपस्या की है। आप ही अधियज्ञ रूप से मेरी इस तपस्या के साक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्-

वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ।

रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्-

तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ 19॥

तिर्यक्- मनुष्येतर पशु; मनुष्य– मानव आदि; विबुध-आदिषु - देवताओं इत्यादि; जीव-योनिषु- विभिन्न जीव योनियों में; आत्म—आत्मा; इच्छया– इच्छा द्वारा; आत्म-कृत— स्वतः उत्पन्न; सेतु— दायित्व; परीप्सया- बनाये रखने की इच्छा से; यः- जो; रेमे- दिव्य लीला सम्पन्न करते हुए; निरस्त- अधिक प्रभावित हुए बिना; विषयः- भौतिक कल्मष; अपि- निश्चय ही; अवरुद्ध— प्रकट; देहः– दिव्य शरीर; तस्मै— उस; नमः– मेरा नमस्कार; भगवते- भगवान् को; पुरुषोत्तमाय- आदि भगवान्।

आप पूर्णकाम हैं, आपको किसी विषय सुख की इच्छा नहीं है, तो भी आपने अपनी बनायी हुई धर्म मर्यादा की रक्षा के लिये पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता आदि जीव योनियों में अपनी ही इच्छा से शरीर धारण कर अनेकों लीलाएँ की हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तम भगवान को मेरा नमस्कार है।

योऽविद्ययानुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या,

निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ।

अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां(म्),

भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं(वँ) विवृण्वन् ॥ 20॥

यः– जो, जिसने; अविद्यया- अविद्या से प्रभावित; अनुपहतः- प्रभावित हुए बिना; अपि- भी; दश-अर्ध– पाँच; वृत्त्या– अन्योन्य क्रिया; निद्राम्— नींद; उवाह— स्वीकार किया; जठरी- उदर के भीतर; कृत– ऐसा करते हुए; लोक-यात्रः- विभिन्न जीवों का पालन पोषण; अन्तः-जले – प्रलयरूपी जल के भीतर;

अहि-कशिपु– सर्प - शय्या पर; स्पर्श-अनुकूलाम्– स्पर्श के लिए सुखी; भीम-ऊर्मि– प्रचण्ड लहरों की; मालिनि– श्रृंखला; जनस्य- बुद्धिमान पुरुष का; सुखम्– सुख; विवृण्वन्— प्रदर्शित करते हुए।

प्रभो! आप अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश- पाँचो में से किसी के भी अधीन नहीं है; तथापि इस समय जो सारे संसारको अपने उदर में लीन कर भयंकर तरंग मालाओं से विक्षुब्ध प्रलयकालीन जल में अनन्त विग्रह की कोमल शय्या पर शयन कर रहे हैं, वह पूर्वकल्प की कर्म परम्परा से श्रमित हुए जीवों को विश्राम देने के लिये ही है।

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य,

लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।

तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योग-

निद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥ 21॥

यत् — जिसकी; नाभि— नाभि; पद्म– कमल रूपी; भवनात्— घर से; अहम्— मैं; आसम्— प्रकट हुआ; ईड्य- हे पूजनीय; लोक-त्रय- तीनों लोकों के; उपकरणः- सृजन में सहायक बनकर; यत्– जिसकी; अनुग्रहेण- कृपा से; तस्मै- उसको; नमः- मेरा नमस्कार; ते– तुमको ; उदर-स्थ- उदर के भीतर स्थित; भवाय- ब्रह्माण्ड से युक्त; योग-निद्रा-अवसान - उस दिव्य निद्रा के अन्त होने पर; विकसत्- खिले हुए; नलिन-ईक्षणाय- जिसकी खुली आँखें कमलों के समान हैं उसे ।

आपके नाभि कमल रूप भवन से मेरा जन्म हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व आपके उदर में समाया हुआ है। आपकी कृपा से ही मैं त्रिलोकी की रचना रूप उपकार में प्रवृत्त हुआ हूं। इस समय योगनिद्रा का अन्त हो जाने के कारण आपके नेत्र-कमल विकसित हो रहे हैं, आपको मेरा नमस्कार है।

सोऽयं(म्) समस्तजगतां(म्) सुहृदेक आत्मा,

सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान् भगेन ।

तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं(म्),

स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं(म्) प्रणतप्रियोऽसौ ॥ 22॥

सः—वह; अयम्— भगवान्; समस्त-जगताम्– समस्त ब्रह्माण्डों में से; सुहृत्-एकः- एकमात्र मित्र तथा दार्शनिक; आत्मा- परमात्मा; सत्त्वेन– सतोगुण के द्वारा; यत्– जो; मृडयते- सुख उत्पन्न करता है; भगवान्- भगवान्; भगेन– छः ऐश्वर्यों द्वारा; तेन—उसके द्वारा; एव– निश्चय ही; मे– मुझको; दृशम्- आत्मपरीक्षण की शक्ति, अन्तर्दृष्टि; अनुस्पृशतात्— वह दे; यथा- जिस तरह; अहम्—मैं; स्रक्ष्यामि- सृजन कर सकूँगा; पूर्व-वत्- पहले की तरह; इदम्— यह ब्रह्माण्ड; प्रणत– शरणागत; प्रियः– प्रिय; असौ –वह (भगवान्) .

आप सम्पूर्ण जगत के एकमात्र सुहृद और आत्मा हैं तथा शरणागतों पर कृपा करने वाले हैं। अतः अपने जिस ज्ञान और ऐश्वर्य से आप विश्व को आनन्दित करते हैं, उसी से मेरी बुद्धि को भी युक्त करें - जिससे मैं पूर्वकल्प के समान इस समय भी जगत की रचना कर सकूँ।

एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या,

यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।

तस्मिन् स्वविक्रममिदं(म्) सृजतोऽपि चेतो,

युञ्जीत कर्मशमलं(ञ्) च यथा विजह्याम् ॥ 23॥

एषः—यह; प्रपन्न– शरणागत; वर-दः- वर देने वाला; रमया- लक्ष्मीदेवी के साथ रमण करते हुए; आत्म-शक्त्या– अपनी अन्तरंगा शक्ति सहित; यत्- जो; करिष्यति- वह कर सके; गृहीत- स्वीकार करते हुए; गुण-अवतारः- सतोगुण का अवतार; तस्मिन्—उसको; स्व- विक्रमम्- सर्वशक्तिमत्ता से; इदम्— इस विराट जगत को; सृजतः- रचते हुए; अपि- भी; चेतः– हृदय; युञ्जीत- लगा रहे; कर्म- कार्य; शमलम्- भौतिक प्रभाव, व्याधि; च– भी; यथा– यथासम्भव; विजह्याम्– मैं त्याग सकता हूँ।

आप भक्तवाञ्छा कल्पतरु हैं। अपनी शक्ति लक्ष्मीजी के सहित अनेकों गुणावतार लेकर आप जो-जो अद्भुत कर्म करेंगे, मेरा यह जगत की रचना करने का उद्यम भी उन्हीं में से एक है। अतः इसे रचते समय आप मेरे चित्त को प्रेरित करें शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं सृष्टि रचना विषयक अभिमान रूप मल से दूर रह सकूँ।

नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुं(म्)सो,

विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।

रूपं(वँ) विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे,

मा रीरिषीष्ट निगमस्य गिरां(वँ) विसर्गः ॥ 24॥

नाभि-ह्रदात्— नाभिरूपी झील से; इह- इस कल्प में; सतः- लेटे हुए; अम्भसि- जल में; यस्य– जिसका ;पुंसः- भगवान् का; विज्ञान- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की; शक्तिः- शक्ति; अहम्– मैं; आसम्- उत्पन्न हुआ था; अनन्त- असीम; शक्तेः- शक्तिशाली का; रूपम्– स्वरूप; विचित्रम्- विचित्र; इदम्– यह; अस्य- उसका ;विवृण्वतः- प्रकट करते हुए; मे- मुझको; मा— नहीं; रीरिषीष्ट– लुप्त; निगमस्य– वेदों की; गिराम्- ध्वनियों का; विसर्गः- कम्पन ।

प्रभो इस प्रलय कालीन जल में शयन करते हुए आप अनन्तशक्ति परम - पुरुष के नाभि कमल से मेरा प्रादुर्भाव हुआ है और मैं हूँ भी आपकी ही विज्ञान शक्ति; अतः इस जगत के विचित्र रूप का विस्तार करते समय आपकी कृपा से मेरी वेदरूप वाणी का उच्चारण लुप्त न हो।

सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्ध-

प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं(वँ) विजृम्भन् ।

उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं(म्),

माध्व्या गिरापनयतात्पुरुषः(फ्) पुराणः ॥ 25॥

सः—वह(भगवान्); असौ– उस; अदभ्र– असीम, करुणः-कृपालु; भगवान्– भगवान्;विवृद्ध– अत्यधिक; प्रेम- प्रेम; स्मितेन- हँसी द्वारा; नयन-अम्बुरुहम्—कमलनेत्रों को; विजृम्भन्- खोलते हुए; उत्थाय- उत्थान हेतु; विश्व-विजयाय- विराट सृष्टि की महिमा के गायन हेतु; च– भी; नः– हमारी ; विषादम्- निराशा; माध्व्या- मधुर; गिरा- शब्द; अपनयतात्– वे दूर करें; पुरुषः– परम; पुराणः- सबसे प्राचीन ।

आप अपार करुणामय पुराण पुरुष हैं। आप परम प्रेममयी मुसकान के सहित अपने नेत्रकमल खोलिये और शेष शय्या से उठकर विश्व के उद्भव के लिये अपनी सुमधुर वाणी से मेरा विषाद दूर कीजिये।